दैनिक जागरण

संयम से मन में व्याप्त अशांति से छुटकारा पाया जा सकता है

नक्सलियों का खात्मा

छत्तीसगढ़ के नारायणपुर जिले में एक मुठभेड़ में आठ नक्सलियों का मारा जाना यही बता रहा है कि उनके सफाए का अभियान पूरी ताकत से जारी है। चूंकि इस मुठभेड़ में एक जवान को अपना बलिदान देना पड़ा और दो अन्य घायल हो गए, इसलिए यह अभियान इस तरह चलाया जाना चाहिए, जिससे सुरक्षा बलों को कम से कम जोखिम का सामना करना पड़े। छत्तीसगढ़ में नई भाजपा सरकार आने के बाद से नक्सलियों के खिलाफ अभियान जिस तरह तेज हुआ है, उससे यही पता चलता है कि उनके खात्मे के लिए आवश्यक राजनीतिक इच्छाशक्ति का परिचय दिया जा रहा है। अच्छा होता कि यह परिचय पिछली कांग्रेस सरकार की ओर से भी दिया जाता। समझना कठिन है कि उसने ऐसा क्यों नहीं किया? नक्सलियों के प्रति किसी भी तरह की नरमी नहीं बरती जानी चाहिए। वे कानून एवं व्यवस्था के लिए गंभीर खतरा हैं। एक समय तो प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह उन्हें आंतरिक सुरक्षा के लिए सबसे बड़ा खतरा बताते थे। यह अच्छी बात है कि केंद्र में मोदी सरकार आने के बाद से नक्सलियों पर एक बड़ी हद तक लगाम लगी है और नक्सल प्रभावित जिलों की संख्या में भी कमी आई है, लेकिन इसके बाद भी उनके सफाए के अभियान में कोई ढील नहीं आनी चाहिए, क्योंकि अतीत में भी नक्सली संगठनों की कमर तोड़ी जा चुकी है और जब ऐसा लगा कि वे पस्त पड़ गए हैं, तब उन्होंने नए सिरे से संगठित होकर फिर से सिर उठा लिया और कानून के शासन के लिए चुनौती बन गए।

छत्तीसगढ़ में इस वर्ष जनवरी से लेकर अभी तक 125 से अधिक नक्सली मारे जा चुके हैं। बेहतर होगा कि उनके खिलाफ जैसा अभियान छत्तीसगढ़ में जारी है, वैसा ही पड़ोसी राज्यों में भी चलाया जाए। ऐसा किया जाना इसलिए आवश्यक है, क्योंकि नक्सली एक राज्य से दूसरे में खिसक जाते हैं। नक्सलियों को जड़-मूल से खत्म करने का अभियान सभी नक्सल प्रभावित राज्यों में चलाया जाना समय की मांग है। अब तो ऐसे सभी राज्यों में भाजपा या उसके सहयोगी दलों की सरकारें हैं। नक्सलियों को पूरी तरह समाप्त करना इसलिए जरूरी है, क्योंकि वे बंदूक के बल पर सत्ता हासिल करने का नापाक इरादा रखते हैं। लोकतंत्र को न मानने और विजातीय-विषैली विचारधारा वाले नक्सलियों के खात्मे का अभियान जारी रखते हुए इसकी तह तक भी पहुंचा जाना चाहिए कि आखिर उन्हें आधुनिक हथियार और विस्फोटक कहां से मिलते हैं? इसी तरह उनके खुले-छिपे समर्थकों के इस दुष्प्रचार के खिलाफ भी सजगता दिखानी होगी कि विकास न होने के कारण नक्सलवाद पनपता है। सच यह है कि नक्सली आदिवासी क्षेत्रों में सड़क, बिजली, पानी, शिक्षा, रेल और अस्पताल पहुंचाने में बाधा डालते हैं। मूलतः वे निर्धन-वंचित तबकों के हितों की फर्जी आड़ लेकर उगाही करने का काम करते हैं। नक्सली संगठन गरीबों के हितैषी नहीं, बल्कि उनके शोषक हैं।

आक्सीजन प्लांट

उत्तराखंड में आमजन की सेहत को लेकर स्वास्थ्य विभाग इस कदर लापरवाह बना हुआ है कि उसे कोरोना काल के दौरान विभिन्न अस्पतालों में लगे आक्सीजन प्लांट तक की सुध नहीं। तीन साल पहले लगे इन प्लांटों में कहीं तकनीशियन की कमी है तो कहीं महंगा संचालन आड़े आ रहा है। आखिर ऐसी नौबत क्यों आई, जबकि आक्सीजन प्लांट कोई गैरउपयोगी उपक्रम भी नहीं हैं। विभाग चाहे तो इनमें उत्पादित आक्सीजन का व्यावसायिक उपयोग कर सकता है, लेकिन ऐसा नहीं हुआ और वर्तमान में प्रदेश के अधिकांश आक्सीजन प्लांट या तो शोपीस बने हुए हैं या फिर बंद होने के कगार पर हैं। देहरादून एवं हरिद्वार को छोड़ गढ़वाल मंडल के पांच जिलों में ही कोरोना काल के दौरान लगे 27 प्लांट में से सिर्फ 13 ही वर्तमान में संचालित हो रहे हैं। कमोबेश यही स्थिति प्रदेश के अन्य जिलों में भी है। ठीक है कि कोरोना काल में स्थितियां प्रतिकूल थीं और अब इतनी आक्सीजन की खपत ही नहीं है, लेकिन ऐसे में क्या इस बात पर विचार नहीं होना चाहिए कि इन प्लांट का क्या बेहतर उपयोग हो सकता है। जनता के धन की इस तरह बर्बादी तो समझदारी नहीं। प्रदेश सरकार स्वास्थ्य व्यवस्था को बेहतर बनाने की दिशा में लगातार प्रयासरत है, इसलिए स्वास्थ्य विभाग को भी अपना सर्वश्रेष्ठ देना होगा। विडंबना देखिए कि तस्वीर ऐसी नहीं है। स्वास्थ्य विभाग ने आक्सीजन प्लांट से उन प्रशिक्षित कर्मचारियों को भी हटा दिया, जो कोरोना काल में इनकी देखरेख के लिए तैनात किए गए थे। कई कार्मिकों को तो महीनों तक वेतन ही नहीं दिया गया, इसलिए वे खुद ही छोड़कर चले गए। विभाग का यह रवैया निश्चित रूप से चिंताजनक है। कोशिश तो यही होनी चाहिए कि प्रदेश के हित में स्थापित छोटी और बड़ी योजना का बेहतर उपयोग हो। समय के साथ कोई योजना प्रासंगिक नहीं रही तो उसमें बदलाव कर प्रासंगिक बनाया जाए।

नई सरकार का एजेंडा

संजय गुप्त

मोदी सरकार को एक ओर जहां आर्थिक प्रगति को बनाए रखना होगा, वहीं भाजपा को अपनी कम हो गई राजनीतिक ताकत को फिर से पाना होगा

अवधेश राजपूत

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में राजग सरकार का गठन होने के बाद यह आवश्यक है कि जिन कारणों से भाजपा को बहुमत से कम सीटें हासिल हुईं, उन पर गंभीरता से विचार किया जाए और भविष्य की नीतियां तय की जाएं। प्रधानमंत्री मोदी अपने तीसरे कार्यकाल में तेलुगु देसम पार्टी और जनता दल-यू के सहयोग से गठबंधन सरकार का नेतृत्व कर रहे हैं। फिलहाल सरकार के स्थायित्व को लेकर कोई खतरा नहीं है और आशा है कि यह सरकार पहले की तरह मजबूती के साथ काम करती रहेगी और सहयोगी दल दलगत हितों अथवा अपने-अपने राज्य के हितों के बजाय राष्ट्रीय हितों को प्राथमिकता देंगे। चूंकि मोदी सरकार ने अपने पिछले कार्यकाल में कोविड महामारी का सामना करने के बाद भी अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान की और इसके चलते भारत सबसे तेजी से बढ़ती आर्थिकी वाला देश बना रहा, इसलिए उम्मीद है कि आने वाले पांच साल में अर्थव्यवस्था को और अधिक बल मिलेगा। मोदी सरकार को एक ओर जहां देश की आर्थिक प्रगति को बनाए रखना होगा, वहीं भाजपा को अपनी कम हो गई राजनीतिक ताकत को फिर से पाने के प्रयत्न भी करने होंगे।

चुनाव नतीजों के विश्लेषण से यह बात प्रमुखता से सामने आई है कि चार सौ पार का नारा भाजपा के लिए मददगार नहीं साबित हुआ, क्योंकि विपक्ष ने यह झूठा प्रचार किया कि भाजपा इतनी अधिक सीटें पाकर संविधान बदल देगी और आरक्षण भी खत्म कर देगी। हालांकि मोदी सरकार ने अपने पिछले कार्यकाल में आरक्षण के दायरे को और बढ़ाया ही है, लेकिन विपक्ष के दुष्प्रचार के चलते आरक्षित वर्ग में यह भय पैदा हो गया कि कहीं चार सौ सीटें पाने के बाद मोदी सरकार आरक्षण खत्म न कर दे। चूंकि आरक्षित वर्ग आरक्षण के लाभ हासिल करते रहना चाहता है और वह उसके लिए एक बड़ा संबल है, इसलिए उसने उसके खिलाफ वोट दिया। अब भाजपा के सामने यह चुनौती है कि आरक्षित तबके के जो लोग उसके प्रति आशंकित हो उठे और जिन्होंने उसके खिलाफ मतदान किया, उनका भरोसा फिर से कैसे हासिल करे।

मोदी सरकार को इस कार्यकाल में रोजगार के मोर्चे पर भी चुनौतियों का सामना करना होगा। अपने देश में रोजगार का मतलब सरकारी नौकरियां अधिक है। औसत भारतीय यह मानकर चलता है कि सबसे अच्छी नौकरी सरकारी नौकरी होती है और यदि एक बार वह मिल जाए तो जीवन निश्चिंत हो जाता है। घर-परिवार के लोग और समाज भी सरकारी नौकरियों को सुरक्षित जीवन की गारंटी मानता है। सरकारी नौकरियों को लेकर यह जो धारणा व्याप्त है, उसे बदलने की जरूरत है। इसलिए और भी, क्योंकि सरकारी और निजी क्षेत्र के कर्मचारियों की कार्यशैली में अंतर है। सरकारी कर्मचारियों को नौकरी जाने का कोई भय नहीं होता, लेकिन निजी क्षेत्र के कर्मचारियों के ऊपर हमेशा तलवार लटकती रहती है। इसलिए उन्हें अपनी कार्यकुशलता बेहतर करनी होती है, जबकि सरकारी कर्मचारी कार्यकुशल बनने का जतन नहीं करते। अपने देश में यदि किसी की सरकारी नौकरी लग जाए तो वह मुश्किल से ही जाती है, भले ही कोई कितनी ही लापरवाही से कार्य करे। नौकरी की गारंटी के चलते सरकारी नौकरियों के प्रति चाहत तो प्रबल है, लेकिन जवाबदेही का अभाव है। सरकारी कामकाज में कोई सुधार इसीलिए नहीं हो पा रहा है, क्योंकि सरकारी कर्मचारी जवाबदेही से मुक्त हैं।

चूंकि विपक्षी दल सरकारी नौकरियों का मुद्दा लगातार उठाते रहते हैं, इसलिए सरकार सरकारी नौकरियों को लेकर दबाव में रहती है। पिछली सरकार ने विपक्षी दलों के दबाव में एक वर्ष में दस लाख नौकरियां देने की घोषणा करके एक राजनीतिक संदेश देने की कोशिश की थी। निःसंदेह रिक्त सरकारी पदों को भरा जाना चाहिए, लेकिन यदि अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाना है तो सरकारी कामकाज की कुशलता को नई धार देनी होगी। ऐसी भी कोई व्यवस्था बनानी होगी, जिससे अपना काम ढंग से न करने वाले सरकारी कर्मचारियों को नौकरी खोने का भय हो। आज जरूरत है कि सरकारी और निजी क्षेत्र में कार्यकुशलता के मामले में प्रतिस्पर्धा कायम हो। सरकारी नौकरियों पर दबाव कम करने के लिए ऐसे भी प्रयत्न करने होंगे कि निजी क्षेत्र में नौकरियां बढ़ें। इसके लिए लघु एवं मध्यम श्रेणी के उद्योगों का विस्तार करना होगा। यदि मोदी सरकार तीसरे कार्यकाल में सरकारी कामकाज के स्तर में सुधार ला सके तो इससे जनता को भी लाभ मिलेगा और अर्थव्यवस्था को भी। प्रशासनिक सुधार एक लंबे समय से लंबित हैं। मोदी सरकार को चाहिए कि प्रशासनिक सुधारों के जरिये सरकारी नौकरियों को जवाबदेही और जिम्मेदारी का पर्याय बना दे। जब सरकारी नौकरियां आरामतलबी का जरिया नहीं रह जाएंगी, कर्मचारियों को उनकी ढिलाई के लिए दंडित करने की व्यवस्था होगी तो सरकारी नौकरियों का आकर्षण कम हो जाएगा।

वैसे तो मोदी सरकार ने पहले से ही सौ दिन का अपना एजेंडा तय कर रखा है और वह उसे पूरा करने को लेकर प्रतिबद्ध भी है, लेकिन उसे इस एजेंडे को पूरा करने के साथ कृषि एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सुधार पर विशेष ध्यान देना होगा। कृषि एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कोई आमूलचूल परिवर्तन नहीं आ सका है। ऐसा करना इसलिए आवश्यक है, क्योंकि आबादी का एक बड़ा वर्ग कृषि पर निर्भर है, जबकि उसकी उत्पादकता कम है। किसानों की आर्थिक स्थिति सुधारना अभी भी एक चुनौती है। कृषि केंद्र और राज्यों, दोनों का विषय है, लेकिन संकीर्ण राजनीति के चलते उसमें आवश्यक सुधार नहीं हो पा रहे हैं। कृषि क्षेत्र में सुधार की किसी अच्छी पहल का भी किस तरह बेजा विरोध होता है, इसे किसानों के भले के लिए बनाए गए तीन कृषि कानूनों के विरोध में छेड़े गए आंदोलन से देखा जा सकता है। हालांकि कुछ किसान संगठनों और राजनीतिक दलों के अड़ियल रवैये के कारण इन कानूनों को वापस लेना पड़ा, लेकिन इसके बावजूद किसानों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए ठोस कदम उठाने जरूरी हैं। मोदी सरकार को अपने एजेंडे को पूरा करने के साथ ही भाजपा को अपनी खोई हुई राजनीतिक ताकत फिर से हासिल करने के जतन करने होंगे। उसे यह ध्यान रखना होगा कि यह काम आसान नहीं।

response@jagran.com

हार में भी जीत देखने की कला

हास्य-व्यंग्य

संतोष त्रिवेदी

इस बार आम चुनाव में सरकार बनाने वाले न ठीक से जीते और न विपक्ष में बैठने वाले ठीक से हारे

चुनाव जा चुके हैं और उसमें जनता को दी गईं सारी गारंटियां भी। इस बार सरकार बनाने वाले न ठीक से जीते और न विपक्ष में बैठने वाले ठीक से हारे। इस तरह जनता के हाथ एक भी गारंटी नहीं लगी। इससे दोनों पक्षों को राहत मिली। लगता है, जनता पर गर्मी का असर कुछ ज्यादा ही चढ़ गया था, सो उसने किसी भी गारंटी पर एकतरफा यकीन नहीं किया। उसने कान दोनों पक्ष के खींचे, पर महसूस केवल एक को ही हुआ। इस चुनाव की सबसे मजेदार बात यह रही कि सरकार बनाने वाले नाखुश लग रहे, जबकि विपक्ष में बैठने वाले गदगद। उनकी यह अप्रत्याशित खुशी सत्ता पाने वालों को हजम नहीं हो रही है। उन्हें इस बात पर शक होने लगा है कि वे वाकई में जीते भी हैं या नहीं! उन्हें इस पर सख्त आपत्ति है कि जो यकीनन हारे हैं, वे खुश कैसे हो सकते हैं? जश्न मनाने का अधिकार सिर्फ जीतने वालों का है, पर होनी को कौन टाल सकता था! जिन्हें हार का चिंतन करना चाहिए, वे जीत के भजन गा रहे हैं। इधर सरकार बनाकर भी कार्यकर्ता थके-हारे लग रहे थे। ऐसा लग रहा था, जैसे दूसरे पक्ष वालों ने इनकी भैंस खोल ली हो, जबकि उनके हाथ केवल पगहा लगा है। फिर भी वे उछल रहे थे। इससे जीतने वाले भ्रमित हो गए। वे बार-बार अपनी जीत को आलाकमान से सुनिश्चित कर रहे थे। आलाकमान पहले से ही असमंजस में था। अंततः उसने बयान जारी कर कह दिया कि हमने अकेले जितनी जीत हासिल की है, सारे विरोधी मिलकर भी हमसे पीछे रहे। दरअसल हारे वे हैं, हम नहीं। हारने पर भी उनकी गर्मी कम नहीं हुई, जबकि हम जीतकर भी ठंडे पड़ गए हैं।

इस बयान के आते ही दूसरे पक्ष से बड़ी गर्म प्रतिक्रिया आई। जवाब था, 'हम हारे कहां हैं! पहले से हम डबल हुए हैं, जबकि उनका नारा 'बबल' की तरह फूटा है। हमारी खिली हुई सूरतें देखकर कोई भी अंदाजा लगा सकता है कि अगर कोई जीता है तो वह हम हैं। हार में छिपी हुई जीत भी हम देख लेते हैं। वे हमें 'घमंडिया' कहते रहे, जबकि असली घमंड तो उन्हीं के पास था। हमने उसे तोड़ा है। इसकी खुशी हमें है। सरकार हमारे खाते तो पहले ही सील कर चुकी थी, अब खुशी भी सील करना चाहती है। चाहे जो हो जाए, हम हर हाल में खुश रहेंगे, बल्कि सरकार न बनाकर हम ज्यादा खुश हैं। सोचिए, अगर सरकार बनाने की जिम्मेदारी हमारे पल्ले पड़ जाती तो कितनी मुसीबत होती। न सहयोगियों की मांग पूरी कर पाते, न ही जनता के लिए खटाखट-गारंटी। इस बार जनता के साथ-साथ मशीनों ने भी हमारा साथ दिया है। उनके साथ न जनता रही, न मशीनें। हमारे लिए यही जीत है।'

इसके बाद गर्म मौसम और धधकने लगा। सरकार बनाने वालों पर अपने भी टूट पड़े। जो उपदेश चुनाव से पहले देने चाहिए, वे नतीजों के बाद आने लगे। जिस प्रकार भीषण गर्मी के बाद बादल बरसते हैं, ऐसे ही चुनाव में झुलसने के बाद कुछ नेता बरसने लगे। इससे कार्यकर्ता फिर भ्रमित हुए कि सरकार उन्हीं की चल रही है कि विपक्ष की? आखिरकार इसकी आंच सहयोगियों को भी तपाने लगी। गर्मी में बड़े-बड़े हिमखंड पिघल जाते हैं, ये तो फिर भी छोटे-मोटे गठबंधन हैं। इनके जुड़ने और बिखरने की खबरें हवा में तैरने लगीं। खबरों से ज्यादा दिन-रात अफवाहें दौड़ने लगीं। गर्मी है ही इतनी कि छोटी-मोटी अफवाह उड़ते ही गर्म हो उठती है। कोई नेता विरोधी गठबंधन के नेता की कुशल-क्षेम भी पूछ ले तो बनी-बनाई सरकार के गिरने की भविष्यवाणी हो जाती है। कइयों ने अपने चैनलों पर नियमित रूप से ज्योतिषी और तोते बैठा लिए हैं। वे दिन में तीन बार यह बता रहे हैं कि सरकार अब गिरी या तब। खबरें गर्म हैं कि फलां गठबंधन बस टूटने ही वाला है। इस तरह के कयास में ही उनकी आस है। पहली बार सरकार न बना पाने पर वे खुश हैं और सरकार में रहकर ये उदास। कोई बताए यह माजरा क्या है!

response@jagran.com

ऊर्जा

जीत-हार का खेल

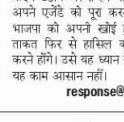

जीवन जीत-हार की जंग है। इस द्वंद्व के दौरान मस्तिष्क में कई प्रश्न उठते रहते हैं। जितना हम प्रश्नों से दूर भागते हैं, उतना सिमटते जाते हैं। कहा गया है कि बीते कल से सीखें, आज में जिएं और आने वाले कल के लिए आस को जिंदा रखें। सबसे जरूरी है कि प्रश्न पूछना बंद न करें, क्योंकि इन प्रश्नों में ही जीवन की जीत या हार छिपी होती है। जीवन सांप-सीढ़ी का खेल है। इसमें एक से शुरू होकर सौ अंक तक पहुंचने की कोशिश की जाती है। आगे बढ़ते हुए हमें रास्ते में सांप और सीढ़ी दोनों मिलती हैं, जीवन में इसी तरह सफलता-असफलता, दोनों का सामना करना होता है। कभी जीत के बहुत करीब पहुंचने वाला खिलाड़ी सांप के डंसने के कारण खेल के आरंभ में पहुंच जाता है और बहुत पीछे चल रहा खिलाड़ी सीढ़ी मिलने के कारण आगे पहुंच जाता है। कई लोग जीवन में सीढ़ी रूपी अवसर मिलने से दूसरों से आगे निकल जाते हैं और वहीं दूसरी तरफ कई आगे निकल चुके लोग सांप रूपी समस्या के कारण जीवन में पिछड़ जाते हैं।

जीवन में हर व्यक्ति को कभी सफलता के अवसर मिलते हैं तो कभी मुसीबतों के पहाड़ टूट पड़ते हैं। जरूरत है संतुलन बनाने की, हौसला रखने की, उम्मीद को कायम रखने की, क्योंकि जीवन कभी एक जैसा नहीं चलता। कष्ट और विपत्ति मनुष्य को शिक्षा देने वाले श्रेष्ठ गुण हैं। जो साहस के साथ उनका सामना करते हैं, वे विजयी होते हैं। निराश न हों, असफलता के दौर में याद रखें कि केवल एक सुनहरा अवसर आपको काफी आगे पहुंचा सकता है। दूसरी ओर अगर आप जीवन में काफी आगे चल रहे हैं तो इस बात का घमंड न करें, क्योंकि एक मुसीबत आपको जमीन दिखा सकती है। हम जीवन के अच्छे-बुरे समय का अंकन संतुलित होकर ठीक से करना सीखें। इसीलिए कहा गया है कि अपनी आंखों को सितारों पर टिकाने से पहले अपने पैर जमीन पर टिका लें।

ललित गर्ग

कब आया पृथ्वी पर ताजा पानी?

मुकुल व्यास

आस्ट्रेलिया के शोधकर्ताओं ने पाया है कि पृथ्वी की सतह ने पहली बार करीब चार अरब वर्ष पहले स्वच्छ जल का अनुभव किया

पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति स्वच्छ जल के बगैर संभव नहीं थी, लेकिन विज्ञानी अभी तक यह निर्धारित नहीं कर पा रहे थे कि हमारे ग्रह पर स्वच्छ जल पहली बार कब आया। अब एक नए शोध में पाया गया है कि पृथ्वी की सतह ने पहली बार लगभग चार अरब वर्ष पहले स्वच्छ जल का अनुभव किया। इससे पहले विज्ञानियों ने 3.5 अरब वर्ष पहले पृथ्वी को स्वच्छ जल मिलने का अनुमान लगाया था। आस्ट्रेलिया और चीन के शोधकर्ताओं ने प्राचीन खनिजों में फंसे आक्सीजन के आइसोटोप का उपयोग यह निर्धारित करने के लिए किया कि ताजे पानी के पहले संकेतों ने हमारे नवजात ग्रह की सतह को कब नम किया होगा। पश्चिमी आस्ट्रेलिया में जैक हिल्स में पृथ्वी की पपड़ी की सबसे पुरानी बची हुई सामग्री मौजूद है। यहां 4.4 अरब वर्षों तक प्राचीन खनिज गर्मी और दबाव से अपेक्षाकृत अपरिवर्तित रहे। इस इलाके में इन दिनों बहुत अधिक पानी नहीं मिलता है, लेकिन विज्ञानियों को चट्टान के 'हाडिन जिरकोन' क्रिस्टल के अंदर फंसी पृथ्वी की सबसे पुरानी बारिश के सुबूत मिले हैं। आस्ट्रेलिया के कर्टिन विश्वविद्यालय के भूविज्ञानियों को जिरकोन खनिज के छोटे क्रिस्टल में आक्सीजन के चार अरब साल पहले के आइसोटोप के चिह्न मिले।

विज्ञानियों ने जिरकोन के छोटे कणों का विश्लेषण करने के लिए 'सेकेंडरी-आयन मास स्पेक्ट्रोमेट्री' का उपयोग किया और यह पता लगाया कि जिस गर्म और तरल चट्टान (मैग्मा) से क्रिस्टल बने, उसमें में कौन से आक्सीजन आइसोटोप मौजूद थे। जैक हिल्स के जिरकोन खनिज में आइसोटोप की अत्यंत हल्की संरचनाएं तभी संभव थीं जब वे मेंटल (पर्पटी और मध्य भाग के बीच का भाग) के नीचे बनी हों और ताजे पानी के संपर्क में भी आई हों। इन क्रिस्टलों के भीतर पृथ्वी की पहली बारिश के सुबूत हो सकते हैं। ऐसे हल्के आक्सीजन आइसोटोप आमतौर पर पृथ्वी की सतह से कई किलोमीटर नीचे चट्टानों को बदलने वाले गर्म, ताजे पानी का परिणाम होते हैं।

यह खोज न केवल पृथ्वी के प्रारंभिक इतिहास पर प्रकाश डालती है, बल्कि यह भी बताती है कि भूभाग और ताजे पानी ने ग्रह के बनने के 60 करोड़ वर्ष से भी कम समय बाद अपेक्षाकृत कम समय सीमा के भीतर जीवन के पनपने के लिए मंच तैयार किया। पहले यह माना जाता था कि उस समय भूपर्पटी समुद्र के नीचे डूबी हुई थी, लेकिन इस नए शोध से पता चलता है कि शुष्क भूमि, ताजे पानी के जलाशय, जल चक्र और संभवतः पृथ्वी पर जीवन भी हमारे अनुमानों से बहुत पहले ही प्रकट हो गए थे। यह निष्कर्ष पृथ्वी के प्रारंभिक इतिहास की हमारी समझ में एक महत्वपूर्ण कदम है। इससे जीवन की उत्पत्ति में आगे की खोज में मदद मिलेगी।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

राजरंग

ढोकले के प्रति दीवानगी

नरेन्द्र मोदी बतौर प्रधानमंत्री तीसरी बार शपथ ग्रहण कर चुके थे। समारोह के बाद आपस में मिलने-जुलने का कार्यक्रम चल रहा था। सात मित्र देशों के आमंत्रित प्रमुखों के साथ पीएम मोदी की मुलाकात की तैयारी चल रही थी। सातों देशों के प्रमुख आपस में मिलजुल रहे थे। दूतावासों के अधिकारी उनकी मदद कर रहे थे। आपसी मुलाकात में खाने पर चर्चा हुई। सब एक-दूसरे से पूछ रहे थे क्या खाया। सभी ने यही बताया कि ढोकला उन्हें काफी पसंद आया। बांग्लादेश की पीएम शेख हसीना ने तो एक मेहमान से कहा कि आज सुबह उन्होंने ढोकला खाया था और शाम को भी ढोकला ही खाया है। दरअसल पिछले कुछ वर्षों से भारत में आमंत्रित विदेशी मेहमानों को दूसरे व्यंजनों के साथ ही ढोकला भी परोसा जा रहा है और ये मेहमान इस गुजराती पकवान के दीवाने भी होते जा रहे।

भारी पड़ी बधाई

नई सरकार के मंत्रियों का दफ्तर पहुंचने पर खूब स्वागत सत्कार हो रहा है। अधिकारी-कर्मचारी सभी अपने-अपने तरीके से मंत्रियों का स्वागत करने में जुटे हैं। इनमें दिलचस्प घटना सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय में देखने को मिली। जहां केंद्रीय मंत्री वीरेंद्र कुमार का स्वागत करना एक अधिकारी पर भारी पड़ गया। हुआ यह कि वह जब मंत्री जी को गुलदस्ता दे रहे थे, तब मुंह में पान मसाला या फिर तंबाकू दबाए हुए थे। स्वागत के इस क्रम में मंत्री जी ने उनसे कुछ पूछा तो उन्हें बोलना पड़ गया और उनकी पोल खुल गई। इस पर मंत्री जी ने उन्हें न सिर्फ फटकारा, बल्कि चेताते हुए कहा कि वह जिस मंत्रालय में पदस्थ हैं, वह नशा मुक्ति अभियान चलाता है। ऐसे में यह ठीक नहीं है। बताते हैं कि जिस समय मंत्री जी यह सब कह रहे थे उस समय वहां और भी लोग मौजूद थे। इसके बाद तो मंत्रालय के अंदर पान मसाला और तंबाकू खाने वालों में हड़कंप मचा हुआ है। डर है कि कहीं सामने पड़े तो उनकी भी क्लास लग जाएगी।

बिरला पर नजर

लोकसभा अध्यक्ष पद को लेकर अटकलों का दौर चल रहा है। नए-नए नामों पर चर्चा हो रही है और विपक्ष इस कवायद में जुटा है कि यह पद भाजपा के पास न जाकर सहयोगी दलों के पास जाए। भाजपा के सहयोगी दलों से विपक्षी नेता इसकी अपील कर रहे हैं कि वे अपना दावा ठोकें। इस बीच पूर्व लोकसभा अध्यक्ष ओम बिरला चुप्पी साधे बैठे हैं। दरअसल बिरला ने इस चुनाव में एक अंधविश्वास को तोड़ दिया है। पिछले 20 वर्षों से ऐसी परंपरा चली आ रही थी कि जो लोकसभा अध्यक्ष बनता है वह दोबारा सदन में नहीं आता है। वह जीतकर आ गए हैं तो क्या अब दूसरा रिकार्ड भी टूटेगा?

गैरों में कहां दम था

मुहावरा है- 'जो जीता, वही सिकंदर', लेकिन यहां तो जो हारा है, वह भी खुद को सिकंदर माने बैठा है। इसके लिए कोई लगातार तीसरी बार लोकसभा चुनाव हारी सिर्फ कांग्रेस पर तंज क्या कसे, ऐसा ही हाल भाजपा के उन नेताओं का भी है, जो दो-तीन कार्यकाल के बाद इस बार हार गए। उत्तर प्रदेश हो, राजस्थान या हरियाणा, भाजपा के हारे सांसद भी सीना चौड़ाकर दिल्ली पहुंच रहे हैं और वरिष्ठ नेताओं को समझा रहे हैं कि क्षेत्र में वे बहुत लोकप्रिय हैं, जनता उनसे नाराज नहीं है। वे आज भी सिकंदर ही हैं, सिर्फ भितरघात की वजह से हार गए। खैर, पार्टी ने भी हार की सीटवार समीक्षा शुरू करा दी है। अब रिपोर्ट बताएगी कि 'हमें तो अपनों ने लूटा, गैरों में कहां दम था...' का सियासी तराना कितनों के लिए हिट रहता है और कितनों के लिए फ्लाप।

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त, पूर्व प्रधान संपादक-स्व. नरेन्द्र मोहन, नॉन एग्जीक्यूटिव चेयरमैन-महेन्द्र मोहन गुप्त, प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 011-43166300, नोएडा कार्यालय : 0120-4615800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 *इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई/रेल शुल्क ₹-2 अतिरिक्त।
****

एक्स से
संबंधों का पौधा जब भी लगाएं, जमीन को भी परख लीजिए, क्योंकि हर मिट्टी में रिश्तों को उपजाऊ बनाने की आदत नहीं होती- अनुपम खेर/ अभिनेता

मोदी सरकार की नई अग्नि-परीक्षा

भगवा दल को जम्मू-कश्मीर, हरियाणा, महाराष्ट्र और झारखंड, इन चारों सूबों में स्थानीय मुद्दों के समाधान पेश करने हैं, पर प्रदेश भर को लुभाने की कुव्वत वाले नेताओं के अभाव में उसे प्रधानमंत्री मोदी के चेहरे पर निर्भर करना होगा। यदि यहां मनमुताबिक नतीजे नहीं मिले, तो एनडीए के तमाम सहयोगी आशंकाओं के शिकार हो सकते हैं।

स्कैन करें
आजकल स्तंभ के तहत प्रकाशित आलेखों के लिए

शशि शेखर

आजकल

शुरुआती अवरोधों से गुजरते हुए नरेंद्र मोदी की तीसरी सरकार रायसीना हिल्स पर स्थापित हो चुकी है। जो लोग इस गठजोड़ के स्थायित्व पर सवाल उठा रहे हैं, वे गलत हैं। हुकूमत को फिलहाल कोई खतरा नहीं। हालांकि, इसे चार महीनों के भीतर एक अग्नि-परीक्षा से अवश्य गुजरना है।

आप जानते हैं कि अगले चार महीनों में चार राज्यों में विधानसभा के लिए चुनाव होने हैं। ये प्रदेश हैं- जम्मू-कश्मीर, हरियाणा, महाराष्ट्र और झारखंड। इन राज्यों के नतीजों में आने वाले दिनों की राजनीतिक करवटों का आगाज छिपा है।

जम्मू-कश्मीर फिलहाल चर्चा में नहीं है, लेकिन देश की आला अदालत सितंबर तक वहां चुनाव कराने के आदेश दे चुकी है। बरसों से हिंसा के अलाव में तप रहे इस सूबे में अनुच्छेद-370 के निरस्तीकरण के बाद पहली बार विधानसभा चुनाव होने जा रहे हैं। ये चुनाव कई वजहों से महत्वपूर्ण हैं। अगली 5 अगस्त को अनुच्छेद-370 हटने के पांच वर्ष पूरे हो जाएंगे। यह देखना दिलचस्प होगा कि मतदाता इन पांच सालों में हुए विकास कार्यों, प्रदेश के विभाजन और अनुच्छेद-370 के फैसले के पक्ष में वोट देते हैं या विपक्ष में?

हम जैसे लोग, जो धरती के इस सबसे खूबसूरत टुकड़े को आग के गोले में तब्दील होता देख चुके हैं, उनके लिए घाटी के मौजूदा हालात सुकूनदेह हैं। उप-राज्यपाल मनोज सिन्हा के नेतृत्व में कोरोना के मारक दिनों में कुदरत की तमाम बाधाओं से जूझते हुए दुर्गम पहाड़ियों के बीच बसे घरों तक जिस तरह सुविधाएं पहुंचाई गईं, वे कुछ वर्ष पहले तक अकल्पनीय थीं। यही नहीं, जमा देने वाले जाड़े में बिजली की अबाध आपूर्ति और चौतरफा विकास कार्यों ने कश्मीरियों के मानस में बुनियादी परिवर्तन किया है। शेष देश ने भी इसका खैर-मकदम किया है। सैलानियों की उमड़ती भीड़ इसकी गवाह है। इस बीच यकायक बढ़े आतंकी हमलों ने कुछ नए सवाल जरूर खड़े कर दिए हैं। वहां का सत्ता-सदन इससे निपट पाएगा या नहीं? मुझे लगता है कि दहशतगर्दों से दिन-रात जूझ रहे जांबाजों पर ऐसे सवाल उठाना ज्यादती है। उनका ट्रैक रिकॉर्ड शानदार रहा है।

यही वजह है कि पिछले महीने आम चुनावों के दौरान घाटी के तमाम मतदान केंद्रों पर मतदाताओं के उत्साह ने नए कीर्तिमान स्थापित कर दिए। इन चुनावों के नतीजे गौरतलब हैं। अखंड जम्मू-कश्मीर के मुख्यमंत्री की कुरसी पर विराज चुके उमर अब्दुल्ला और महबूबा मुफ्ती को जनता ने धराशायी कर दिया। भाजपा ने घाटी में चुनाव नहीं लड़ा, पर जम्मू खित्ते से उसे दो सीटें हासिल हो गईं। बाकी बची सीटों में एक पर निर्दलीय और अन्य दो पर नेशनल कॉन्फ्रेंस की जीत हुई।

मतलब साफ है, पीडीपी का किला दरक रहा है। उमर अब्दुल्ला हारे जरूर, पर उनकी अगुवाई वाली नेशनल कॉन्फ्रेंस किसी अन्य प्रादेशिक दल से कहीं अधिक मजबूत साबित हुई। भाजपा भले नंबर एक रही हो, पर उसे फैसलाकुन सीटें लाने के लिए अपना आधार बढ़ाना होगा। गृह मंत्री अमित शाह कह चुके हैं कि हम आगामी विधानसभा चुनावों में यहां की सीटों पर अपने प्रत्याशी खड़े करेंगे। क्या इस बार भगवा दल घाटी में जीत के पुराने सपने को चरितार्थ कर सकेगा? यहां कांग्रेस की हालत खस्ता है। क्या वह गठबंधन के सहारे अपनी नाव खेना चाहेगी?

इस प्रदेश की नई कहानी हार-जीत का अंकगणित नहीं, बल्कि मतदान का मन-मिजाज लिखेगा। समूची दुनिया की निगाहें इस चुनाव पर टिकी हैं।

अब हरियाणा की चर्चा। भाजपा 2019 में यहां दस में दसों सीटें जीत गई थी। इस बार उसे आधी सीटों से संतोष करने पर मजबूर होना पड़ा है। कांग्रेस और आम आदमी पार्टी मिलकर उसके खिलाफ लड़े थे। इस गठबंधन को 47.61 प्रतिशत मत मिले। भाजपा 46.11 फीसदी मत पाकर भले ही थोड़ा पीछे रह गई हो, पर पिछले विधानसभा चुनाव के मुकाबले उसके मत प्रतिशत में लगभग दस फीसदी का उछाल आया है। कांग्रेस ने भी 15.59 फीसदी अधिक वोट पाकर पहले के मुकाबले काफी बेहतर प्रदर्शन किया है।

यहां भाजपा और कांग्रेस की सीधी टक्कर हर हाल में कुछ शोले, तो कुछ चिनगारियां पैदा करेगी।

महाराष्ट्र का मामला तो और अधिक ध्यानाकर्षक है। यहां किसी अन्य प्रदेश के बरक्स कहीं ज्यादा राजनीतिक किरदार लोकसभा चुनाव के दौरान अपनी पहचान की लड़ाई लड़ रहे थे। इनमें उद्धव ठाकरे एक बार फिर सबसे बड़ी शक्ति के तौर पर उभरे हैं। 'मराठा क्षत्रप' के नाम से मशहूर शरद पवार ने दस में से आठ स्थानों पर जीत हासिल कर खुद को पुनः साबित कर दिया है। कांग्रेस, शिवसेना (उद्धव ठाकरे) और एनसीपी (शरद पवार) की महाविकास अघाड़ी यानी 'इंडिया' ब्लॉक ने करीब 44 फीसदी मत हासिल किए, जबकि भाजपा की अगुवाई वाला गठबंधन 42.73 प्रतिशत के साथ कड़ी लड़ाई में रहा। इंडिया ब्लॉक ने 48 में से 30 सीटें जीती हैं। इस चुनाव से पहले तक महाराष्ट्र को भाजपा और उसके सहयोगियों का गढ़ माना जाता था।

महाराष्ट्र की जनता ने हरियाणा और जम्मू-कश्मीर की भांति यहां भी सिद्धांतहीन जोड़-तोड़ की राजनीति को पूरी तरह नकार दिया है। कभी खुद को एनसीपी का असली कर्ता-धर्ता बताने वाले अजित पवार महज एक सीट पर सिमट गए। मौजूदा मुख्यमंत्री एकनाथ शिंदे ने सात निर्वाचन क्षेत्र जीतकर इज्जत तो बचा ली, पर प्रदेशव्यापी अपील में वह उद्धव के सामने फीके पड़ गए हैं। हमें इस सूबे में चुनाव से पहले आयाराम-गयाराम का नया तमाशा देखने को मिल सकता है। भारतीय जनता पार्टी यहां प्रमुख राजनीतिक दल जरूर है, पर उसके पास कोई प्रदेशव्यापी जिताऊ चेहरा नहीं है। उसका गठबंधन इस बार सफल साबित नहीं हुआ है।

अंत में झारखंड की चर्चा। अपने जन्म से यह प्रदेश शीर्ष नेताओं के भ्रष्टाचार और कारागार-यात्राएं झेलने को अभिशप्त है। वहां के पूर्व मुख्यमंत्री हेमंत सोरेन फिलवक्त कदाचार के आरोप में सलाखों के पीछे हैं। वहां सरकार तो नहीं गिरी, पर झारखंड मुक्ति मोर्चा में अंदरूनी खदबदाहट के चिह्न साफ देखे जा सकते हैं। हेमंत सोरेन की पत्नी कल्पना सोरेन गांडेय से उप-चुनाव जीतकर विधायक बन चुकी हैं। उनकी जेठानी सीता सोरेन दुमका से भाजपा के टिकट पर लोकसभा का चुनाव लड़ीं, पर हार गईं। इस चुनाव में सिर्फ झारखंड मुक्ति मोर्चा नहीं, बल्कि सोरेन परिवार की टूट भी जगजाहिर हुई।

इस सबके बावजूद इंडिया ब्लॉक, जिसका झारखंड मुक्ति मोर्चा भी सदस्य है, आदिवासी, ईसाई, दलित और मुस्लिम आबादी के बूते एक सशक्त गठबंधन बनाता दीख रहा है। भारतीय जनता पार्टी इस बार 14 में से नौ सीटें जीतने में भले कामयाब रही हो, पर उसे झटका लगा है। यहां भी उसके पास प्रदेशव्यापी अपील का कोई नेता नहीं है।

मतलब साफ है, भगवा दल को इन सूबों में स्थानीय मुद्दों के समाधान पेश करने हैं, पर प्रदेश भर को लुभाने की कुव्वत वाले नेताओं के अभाव में उसे प्रधानमंत्री मोदी के चेहरे पर निर्भर करना होगा। यदि यहां मनमुताबिक नतीजे नहीं मिले, तो एनडीए के तमाम सहयोगी आशंकाओं के शिकार हो सकते हैं। रही बात इंडिया ब्लॉक की, तो वह झारखंड के अलावा कहीं सत्ता में नहीं है। अगर परिणाम उसके पक्ष में नहीं गए, तो 4 जून के नतीजों से उम्मीद की जो चंद किरणें उसे हासिल हुई हैं, वे भी धुंधला जाएंगी। ये चुनाव सभी पक्षों के लिए चुनौतियां लेकर आने वाले हैं।

@shekharkahin
@shashishekhar.journalist

जीना इसी का नाम है

सुजन चोंबा
पर्यावरणविद्

मां से मेहनत करना सीखा, कुदरत से सहनशीलता

जब वह नौ साल की थीं, तब मां ने सोचा कि बेटी को बोर्डिंग स्कूल में डाल दिया जाए, तो इसका भविष्य संवर जाएगा। सुजन को लेकर जब वह स्थानीय बोर्डिंग स्कूल पहुंचीं, तो उनके कपड़ों की हालत देखकर कर्मचारियों ने उन्हें दुत्कार दिया। मगर कोई मां कहां हिम्मत हारती है!...

संयुक्त राष्ट्र महासचिव एंटोनियो गुटेरस से लेकर दुनिया भर के पर्यावरणविद् लगातार कह रहे हैं कि कुदरत हमसे कुछ कह रही है, उसको सुनिए; मौसम विज्ञानी आंकड़े पेश कर रहे हैं कि पिछले बारह महीने दर्ज इतिहास के सबसे गरम माह रहे हैं, मगर वातानुकूलित कमरों में बैठे इस ग्रह के नीति-नियंता किसी की नहीं सुन रहे और इसका खामियाजा हाशिये पर जीने वाले इंसान ही नहीं, बेशुमार बेजुबान जीव भी भुगत रहे हैं। ऐसे में, सुजन चोंबा जैसे लोगों की कोशिशें प्रेरित करती हैं कि हमको अपने प्रयास जारी रखने चाहिए।

केन्या की किरियांगा काउंटी में 41 साल पहले पैदा हुई सुजन का बचपन काफी अभावों में बीता। चूंकि वह अकेली मां की संतान हैं, इसलिए घर चलाने की पूरी जिम्मेदारी मां के ही कंधों पर थी। एक रिश्तेदार से किराये पर छोटा-सा भूखंड लेकर वह उसमें पहाड़ी मिर्च और फ्रेंच बीन्स उगाया करती थीं। लिहाजा, उनका ज्यादातर वक्त खेतों में बीतता। ऐसे में, सुजन की परवरिश उनकी नानी ने ही की। मां हाड़तोड़ मेहनत तो करतीं, मगर उस कमाई से जैसे-तैसे घर चल पाता था। गुरबत को अक्सर बागी होने से जोड़ दिया जाता है, पर यदि परवरिश अच्छी हो, तो वह आपको संजीदा बनाती है। सुजन का पालन-पोषण ऐसे ही संवेदनशील माहौल में हुआ। मां ने खुद तो स्कूल का मुंह नहीं देखा था, मगर बेटी को उन्होंने हमेशा प्रोत्साहित किया कि गरीबी की खाई से बाहर निकलने की अकेली राह शिक्षा है। नन्ही सुजन स्कूल के साथ-साथ जिंदगी की किताब से भी सबक सीखती गईं। जब वह नौ साल की थीं, तो मां ने सोचा कि बेटी को बोर्डिंग स्कूल में डाल दिया जाए, तो इसका भविष्य संवर जाएगा। पर जब सुजन को लेकर वह स्थानीय बोर्डिंग स्कूल गईं, तो उनके कपड़ों की हालत देखकर कर्मचारियों ने उन्हें दुत्कार दिया।

मगर कोई मां कहां हिम्मत हारती है! नतीजतन, सुजन को पश्चिमी केन्या के एक बोर्डिंग स्कूल में दाखिला मिल गया। मां-बेटी, दोनों बहुत खुश थीं। मगर जल्द ही वह वक्त भी आ गया कि मां के पास बोर्डिंग की फीस चुकाने लायक पैसे न थे और सुजन को वह स्कूल छोड़ना पड़ा। वह वापस किरियांगा के सरकारी हाईस्कूल आ गईं। उस स्कूल के सभी वरिष्ठ छात्रों को एक-एक भूखंड दिया गया था, जिसमें उन्हें कोई फसल उगानी थी। यह उनके पाठ्यक्रम का अनिवार्य हिस्सा था। चूंकि किरियांगा की जलवायु ठंडी है, इसलिए सुजन ने अपने भूखंड में गोभी लगाए। उन्होंने जैविक खेती का प्रयोग किया और रासायनिक कीटनाशकों से परहेज बरता। सुजन की फसल काफी अच्छी हुई थी।

सुजन पर वांगारी मथाई (नोबेल विजेता) की वन संरक्षण मुहिम का भी गहरा असर पड़ा, बल्कि केन्या की युवा पीढ़ी उनकी बातों से गहरे प्रभावित थी। मथाई यही मंत्र दोहरातीं कि

प्रकृति हम सबकी है। बहरहाल, हाईस्कूल के बाद सुजन कानून की पढ़ाई करना चाहती थीं, मगर एक प्वॉइंट कम रह जाने के कारण विश्वविद्यालय ने उन्हें वानिकी पाठ्यक्रम में दाखिला दिया। शायद नियति ने इसी के लिए उन्हें चुना था। डिग्री हासिल करते ही सुजन को 'इंटरनेशनल सेंटर फॉर रिसर्च इन एग्रो फॉरेस्ट्री' (आईसीआरएएफ) में नौकरी मिल गई और कुछ ही वर्ष में उन्हें 'री-ग्रीनिंग अफ्रीका' जैसे महत्वाकांक्षी कार्यक्रम का नेतृत्व करने का मौका मिल गया। इस कार्यक्रम के तहत उनकी टीम को अफ्रीका की दस लाख हेक्टेयर बेकार भूमि को उपयोग योग्य बनाने में सफलता मिली।

सुजन की जिंदगी से आर्थिक अभाव तो खत्म हो चुका था, मगर कृषि-वानिकी के क्षेत्र में ज्ञान हासिल करने के लिए अभी काफी कुछ बाकी था। लंदन की बैंगोर यूनिवर्सिटी से 'सस्टेनेबल ट्रॉपिकल फॉरेस्ट्री' में मास्टर करने का अवसर भी सामने था, पर दुविधा यह थी कि सुजन उस वक्त एक बेटे की अकेली मां थीं और बार-बार उनका अपना बचपन सामने आ जाता था। ऐसे में, सुजन की मां ने बेटी का हौसला बढ़ाया कि ऐसे मौके बार-बार नहीं मिलते। बेटे को मां के हवाले कर वह लंदन चली गईं। वहां से डिग्री लेकर वह जलवायु परिवर्तन की शोधार्थी के रूप में 'आईसीआरएएफ' में वापस लौट आईं। उन्होंने जलवायु परिवर्तन के बारे में अफ्रीका के कई बड़े नेताओं को महत्वपूर्ण सलाह दी, ताकि वे अंतरराष्ट्रीय मंचों पर पूरी संजीदगी से अपने मुद्दे उठा सकें।

अब तक हासिल अनुभवों ने सुजन को इतना सुकून दिया था कि उन्होंने इस विषय में कोपेनहेगन यूनिवर्सिटी से पीएचडी भी कर डाली। इन अध्ययनों ने प्रामाणिक आंकड़ों के साथ पुष्ट किया कि मानव निर्मित त्रासदी ही नहीं, कुदरती आपदाओं का भी सबसे गहरा असर महिलाओं और बच्चों पर पड़ता है। इसलिए सुजन केन्या व दीगर अफ्रीकी देशों में जैविक खेती व पर्यावरण संरक्षण के लिए स्थानीय लोगों को जागरूक करने लगीं और उन्हें स्थानीय मृदा व जलवायु के अनुकूल वृक्ष लगाने तथा जल-संरक्षण के लिए प्रशिक्षित करने में जुट गईं। शासन-प्रशासन में बैठे लोगों को भी उन्होंने इस दिशा में कई बड़े कदम उठाने को प्रेरित किया।

इन दिनों सुजन 'वर्ल्ड रिसोर्सेज इंस्टीट्यूट' की निदेशक हैं, जिनके तहत लगभग 100 लोगों की टीम कार्य कर रही है। सुजन के कार्यों की अहमियत को देखते हुए साल 2022 में उन्हें दुनिया की 25 शीर्ष महिला पर्यावरण विज्ञानियों में

इन दिनों सुजन 'वर्ल्ड रिसोर्सेज इंस्टीट्यूट' की निदेशक हैं। उनके कार्यों की अहमियत को देखते हुए साल 2022 में उन्हें दुनिया की 25 शीर्ष महिला पर्यावरण विज्ञानियों में शामिल किया गया। *बीबीसी* ने उन्हें दुनिया की 100 प्रभावशाली महिलाओं में गिना है।

शामिल किया गया। पिछले साल *बीबीसी* ने उन्हें दुनिया की 100 प्रभावशाली महिलाओं में गिना था।

बकौल सुजन, 'राजधानियों में बैठे शासक अक्सर स्थानीयता की उपेक्षा करके नीतियां बनाते हैं, जिनमें टिकाऊ समाधान नहीं है। प्रकृति ने अपने लिए विविधता को चुना है, उसे इसी रूप में सुरक्षित-संरक्षित किया जा सकता है।' काश! सुजन जैसे कुछ लोग हर बस्ती, हर शहर में सक्रिय हो जाएं, तो शायद कुदरत के इशारे भी यूं उपेक्षित नहीं रहेंगे।

प्रस्तुति : चंद्रकांत सिंह

वो लम्हा

बेंजामिन स्पॉक
चिकित्सक व फादर ऑफ पेरेंटिंग

बच्चे पालना केवल मां का काम नहीं

दिव्यांगों की दुनिया का नक्शा भला किसने खींचा है? इंसानी दुनिया में इतने करुण नक्शों की भला क्या जरूरत थी? आज इमारतों, रेल, सड़क, घर, उद्यान के नक्शे गढ़ने से ज्यादा जरूरी शायद मानवीयता, सेवाओं, संबंधों और पालन-पोषण के सही ढंग गढ़ना है।

बचपन में कई बार लगता है, पिता ने ही यह संसार पसार रखा है। वही पालक, वही दाता हैं। बच्चों के लिए परिवार-समाज की सबसे मजबूत कड़ी पिता जब पास हों, तो घोड़ा बेच नींद आती है। अचरज नहीं कि वह युवक भी अपने पिता का मुरीद है। पिता अमेरिका की बड़ी रेलरोड कंपनी में विधि सलाहकार हैं। बेटे को लगता है, रेलरोड कंपनी में सबसे सम्मानित पेशा आर्किटेक्ट का है, मतलब वास्तुविद। वह जो नक्शा खींच देता है, बाकी लोग उसे साकार करने में जुट जाते हैं। नक्शा खींचने वाला वाकई बड़ी इज्जतदार, रसूखदार होता है। कुल निचोड़ यह कि उस नवयुवक के मन में अक्सर वास्तुविद बनने की तमन्ना गुलजार रहती है। इसी बीच शौकिया तौर पर वह अपने दोस्तों के साथ समूह नौकायन शुरू करता है और साल 1924 के ओलंपिक में अपने अन्य सात साथियों के साथ स्वर्ण पदक भी जीत लाता है। इसके बाद भी वह जानता है कि नौका हमेशा काम नहीं आएगी, जीवन में वास्तुविद तो बनना ही होगा।

इस बीच गरमी की छुट्टियां पड़ती हैं, तो युवक दिव्यांग सेवा वाले एक समर कैंप में शामिल हो जाता है, जहां भांति-भांति के लाचार बच्चे हैं। किसी के पैर नहीं, तो कोई बिना हाथ है। किसी को दिखता नहीं, तो कोई कुछ सुनता नहीं। हे भगवान, ये भी इंसान हैं, इन्हें भी इसी दुनिया में रहना है, अपनी पूरी लाचारी-बीमारी के साथ। ये ऐसे लोग, जो हमेशा पीछे रहेंगे, पर जिंदा रहेंगे, अपने पूरे वजूद और अलहदा दास्तां के साथ।

समर कैंप में वह इस बात को करीब से समझ गया कि ऐसे दिव्यांग जन डॉक्टरों को ही अपने सबसे करीब पाते हैं। उनकी पीड़ा को डॉक्टर ही समझ पाते हैं, बाकी लोग तो अक्सर मखौल उड़ाते हैं, घृणा भी करते हैं और बोझ भी मानते हैं। समर कैंप में वह नवयुवक गहरी सोच में पड़ जाता है। इन दिव्यांगों को बचपन में भी वाजिब दुलार नहीं मिला है, पर क्या सभी स्वस्थ बच्चों को वाजिब दुलार मिल पाता है? दुनिया बनाने वालों ने कितनी असंवेदना के साथ सारा कुछ गढ़ा है? दिव्यांगों की दुनिया का नक्शा भला किसने खींचा है? इंसानी दुनिया में इतने करुण नक्शों की भला क्या जरूरत थी? इमारतों, रेल, सड़क, घर, उद्यान के नक्शे गढ़ने से ज्यादा जरूरी शायद मानवीयता, सेवाओं, संबंधों और पालन-पोषण के ढंग गढ़ना है। वह सोचने लगा कि ईश्वर ने जो भी रचा है, उसे हम व्यावहारिक वात्सल्य से सुगढ़, सुंदर, सुविधाजनक कैसे बना सकते हैं?

उस समर कैंप में रहते ही युवक ने तय किया कि उसे वास्तुविद नहीं, चिकित्सक बनना चाहिए। चिकित्सक बनकर और उसमें भी बच्चों का चिकित्सक बनकर वह समाज में बुनियादी बदलाव की नींव डालने की कोशिश कर सकेगा।

फिर क्या था, येल मेडिकल स्कूल से एक विरल चिकित्सक जीवन की शुरुआत हुई। मेडिकल डिग्री न्यूयॉर्क शहर के कोलंबिया विश्वविद्यालय से हासिल हुई। वह साल 1929 में अपनी कक्षा के सर्वश्रेष्ठ छात्र करार दिए गए। उन्हें न्यूयॉर्क शहर में लोग शिशु रोग विशेषज्ञ बेंजामिन स्पॉक के नाम से पहचानने लगे। उन्होंने गहराई से अध्ययन किया कि बच्चों का विकास कैसे होता है और कैसे किया जाना चाहिए। पूरे दस साल डॉक्टरी के अनुभव के बाद उन्होंने पुस्तक लिखने का फैसला किया। दिन भर मरीज देखते थे और रात के समय किताब लिखते थे। साल 1946 में पुस्तक *बेबी ऐंड चाइल्ड केयर* समाज और चिकित्सा की दुनिया में अवतरित हुई। अपने किस्म की पहली अनुपम पुस्तक ने पेरेंटिंग या अभिभावकों की दुनिया को झकझोर कर जगा दिया। डॉक्टर बेंजामिन स्पॉक (1903-1998) ने खूब लेख लिखे, टीवी पर आए, विश्वविद्यालयों में पढ़ाए, माता-पिता से चर्चा करते हुए देश भर में भाषण दिए।

यह भी अपने आप में रिकॉर्ड है कि छह महीने में ही उस किताब की पांच लाख प्रतियां बिक गई थीं। अब तक चालीस से ज्यादा भाषाओं में इस किताब की पांच करोड़ से ज्यादा प्रतियां लोगों के घरों में बहुत सम्मान से शोभायमान हैं और करोड़ों माता-पिता को राह दिखा रही हैं। डॉक्टर स्पॉक अक्सर कहते थे कि आज बहुत कम बच्चों को यह विश्वास दिलाया जाता है कि उनका मुख्य कर्तव्य अपने परिवार, अपने देश या भगवान की सेवा करना है। वह बच्चों को ज्यादा अनुशासन में रखने के पक्ष में नहीं थे, उनका मानना था कि बच्चा स्वयं ऊर्जा की आपूर्ति करेगा, मां-बाप बस लगाम थामे रहें, मंजिल मिलना तय है।

दुनिया जब पिता दिवस मनाती है, तब उन्हें भी खूब याद किया जाता है, उन्होंने पितृसत्ता के दौर में भी पुरजोर ढंग से कहा था कि पिता को भी बच्चों के पालन-पोषण में पूरी भागीदारी निभानी चाहिए। बच्चे पालना केवल मां का काम नहीं।

प्रस्तुति : ज्ञानेश उपाध्याय

हिंदी टालोचना का यह गदर काल

तिरछी नजर

सुधीश पचौरी हिंदी साहित्यकार

आज भांति-भांति के आलोचक हैं और भांति-भांति की आलोचना! यकीन न हो, तो किसी भी पत्रिका के आलोचना और 'रिव्यू' पेजों और सोशल मीडिया में आलोचना के नाम पर बंटती रेवडियों को देख लीजिए। ये दो-चार आचार्यों का जमाना नहीं है, बल्कि असंख्य आलोचकों, यानी टालोचकों का जमाना है।

आज हरेक टालोचक के पास अपनी नजर और अपना नजरिया है। एक कहता है, इस कृति को ऐसे देखो। दूसरा कहता है कि उस तरह से देखो। तीसरा कहेगा कि इधर से देखो। चौथा कहता है, उधर से देखो। पांचवां कहता है कि यहां से देखो, तो छठा कहेगा, वहां से देखो। आज देखने वाले से कहीं अधिक दिखाने वाले हैं, जो कहते हैं, जैसे हम देखते हैं, वैसे ही देखो! इस 'टालोचना' की यही नई तानाशाही है, जो कहती है कि देखो, तो हमारे कहे अनुसार, वरना न देखो! यह टालोचना देखने-दिखाने की 'डिक्टेटरी' है!

कुछ ऐसे टालोचक भी हैं, जो किसी भी रचना पर सवारी गांठने लगते हैं कि लेखक ने कविता-कहानी में यह...यह...यह क्यों नहीं लिखा? अगर ये सब लिखता, तभी सही लेखक होता। इसका मतलब यह कि सौ बरस पहले लिख चुका लेखक दोबारा जन्म लेकर इन महाशय का 'सर्टिफिकेट' लेकर जाए! इनका बस चले, तो प्रसाद की कलम पर ही बैठ जाएं और चाहें, तो कालीदास को 'नालीदास' बना दें!

इन दिनों हिंदी में कुछ ऐसे टालोचक भी हैं, जो लेखक की जाति बताते हुए उसके लेखन को उसकी जाति का पर्याय बताते हैं। इनके अनुसार, सारा लेखन सिर्फ जाति-लेखन है। अब जाति ही लिखें, जाति ही पढ़ें और जाति ही सुनें। यह तो टुकड़े-टुकड़े टालोचना है। कुछ टालोचक ऐसे हैं, *जो राई ते परबत करै, परबत राई मांहि!* कुछ 'पेड टालोचक' भी हैं, यानी 'पे' करो और जो चाहो लिखवा लो!

पहले लोग आलोचना को सिंहावलोकन या विहंगावलोकन कहते थे, लेकिन आज के टालोचक सिर्फ हिंसावलोकन करते हैं। कई ऐसे कथित प्रगतिशील टालोचक भी हैं, जो 'फिक्सर' का काम करते हैं, जो इनकी 'लाइन' का नहीं, वह प्रतिक्रियावादी, सांप्रदायिक, हिंदुत्ववादी और फासिस्ट है। टालोचना के गेट पर ये टालोचक दोनाली लेकर बैठे रहते हैं।

यूं तो अपने यहां साहित्यशास्त्र के छह स्कूल मौजूद हैं। उधर-पश्चिम की आलोचना संरचनावाद से उत्तर-संरचनावाद और विखंडन तक आ चुकी है, पर हिंदी की टालोचना रेवड़ीवाद से आगे नहीं गई। अब जब गाली को ही आलोचना समझ लिया जाए, तो कुछ पढ़ने-लिखने की क्या जरूरत!

आलोचना का अर्थ है, 'रचना को सम्यक भाव से देखना, परखना और फिर मूल्यांकन करना...।' लेकिन आज की टालोचना का अर्थ है, किसी को उठाना, किसी को गिराना, किसी की मालिश करना, किसी की पॉलिश करना, किसी की नालिश करना और किसी के खिलाफ साजिश करना। अब न कोई टालोचना का महाबली है, न अल्पबली है, बल्कि जो हैं, वे गालियों के बाहुबली हैं, इसीलिए आज की टालोचना में कई 'गैंग' और 'गैंगस्टर' हैं, जिनमें कभी-कभी 'गैंगवार' भी हो जाती है।

कुछ पंजीरी टालोचक भी हैं, जो हर किसी को अपनी टालोचना की पंजीरी बांटते रहते हैं। इस पंजीरी टालोचना का शुभारंभ भी हिंदी के अंतिम महाबली ने किया था। वह हर हफ्ते जिस-तिस की रचना की ऐसी तारीफ कर देते कि लगता, अभी-अभी हिंदी में 'ब्रेख्त' या 'गोर्की' हुआ है। इस पंजीरी टालोचना से वह हिंदी में अनगिनत ब्रेख्तों और गोर्कियों की फोटो कॉपियों का घूरा बना गए, जो बदबू देता रहता है!

जाहिर है, हिंदी आलोचना का खूंटा उखड़ गया है। आज इसमें न कोई मान है, न मानक है, इसीलिए हमने उसे टालोचना कहा और इसी कारण हिंदी टालोचना में गदर मचा दिखता है।

कटाक्ष

राजेंद्र धोड़पकर

40 बरसों तक बैन लगा रहा था बाजे पर

हारमोनियम संगीत के बड़े से बड़े उस्तादों की संगत, मंदिर, दरगाह, चर्च और गुरुद्वारों में नज़र आता है। यह गली-गली घूमकर गाने-बजाने वालों कलाकार से लेकर ऊंचे फनकारों तक के हाथों में दिखता है। इस पर ऐसी धुनें बनाई गईं जो आज भी लोग गुनगुना उठते हैं। लेकिन बहुत कम लोगों को यह पता होगा कि हारमोनियम इतना लोकप्रिय इंस्ट्रूमेंट होने के बावजूद भारत में 40 बरसों तक बैन रहा। बैन की कहानी बता रहे हैं अनूप पाण्डेय

विश्व संगीत दिवस
21 जून (शुक्रवार) पर विशेष

हिंदुस्तानी संगीत से हारमोनियम का ऐसा ही रिश्ता है, जैसा शरीर और आत्मा का। इस बात पर अब शायद ही किसी को शक हो कि भारतीय उपमहाद्वीप के सबसे लोकप्रिय वाद्ययंत्र के रूप में हारमोनियम ने अपनी पहचान बनाई है लेकिन उसे यह प्रतिष्ठा और स्वीकृति यों ही हासिल नहीं हुई। हारमोनियम को हिंदुस्तानी मौसीकी की दुनिया में अपनी जगह बनाने के लिए लंबी लड़ाई लड़नी पड़ी है। हारमोनियम पर इसी हिंदुस्तान में करीब 4 दशकों तक प्रतिबंध रहा है। प्रतिरोध स्वरूप ऑल इंडिया रेडियो से अर्थी निकाली गई थी हारमोनियम की। आज भी शास्त्रीय संगीत के रियाज़ में वह वर्जित है। यह विडंबना भी कम नहीं कि पूरी दुनिया घूमने के बाद हारमोनियम इसी हिंदुस्तान में आकर सहज और सरल हुआ। हारमोनियम ने मंदिरों से लेकर घरों तक में अपनी जगह बनाई।

हमारे देश में नहीं हुआ था आविष्कार

शुरुआती दिनों में हारमोनियम की क्या हैसियत रही होगी, इसका अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि इसे बाजा, पेटी और तवायफ खाने का बाजा कहा जाता था। हारमोनियम सहज रूप से इतना हिंदुस्तानी हो गया है कि ज्यादातर लोग समझते हैं इसका आविष्कार भारत में ही हुआ। लेकिन ऐसा बिलकुल नहीं है। हिंदुस्तान में हारमोनियम ने खुद को प्रतिरोध की बुनियाद पर खड़ा किया है। इसका आविष्कार 17वीं सदी के शुरुआती दशक में यूरोप में हुआ। एक वक्त था जब यह वाद्ययंत्र खत्म होने के कगार पर पहुंच गया था, लेकिन फिर फ्रांस में इसे नया जीवन मिला। बहुत-से लोग अलेक्जेंड्रे डेबेन (Alexandre Debain) को हारमोनियम का आविष्कारक मानते हैं। उन्होंने 1840 में इसे पेटेंट कराया और इस बाजे का नाम हारमोनियम रखा है।

भारत में आकर मिला नया रूप

19वीं सदी की शुरुआत में पश्चिमी व्यापारी हारमोनियम को हिंदुस्तान लेकर आए थे। पहले यह ज्यादातर चर्च का म्यूज़िक इंस्ट्रूमेंट हुआ करता था। आकार में काफी बड़ा था। तब इसे पैरों से पंप किया जाता था। सन 1875 में बंगाल की कंपनी द्वारकिन ऐंड सन (Dwarkin & Son) के द्वारकानाथ घोष ने हारमोनियम को हाथ से पंप करने वाले वाद्ययंत्र के रूप में विकसित किया। इसके बाद इसने भारत में ऊंचाइयों को छू लिया। यह वह दौर था, जब हारमोनियम यूरोप से तो धीरे-धीरे गायब होने लगा था, लेकिन भारतीय संगीतकारों की पहली पसंद बनता जा रहा था। 1915 तक भारत दुनिया में इस उपकरण का अग्रणी निर्माता बन गया और यह धीरे-धीरे भारतीय संगीत का अभिन्न हिस्सा बनने लगा। समय के साथ इसके स्वरूप में भी बदलाव होते गए और यह भारत में सबसे ज्यादा इस्तेमाल किया जाने वाला वाद्ययंत्र बन गया। 19वीं सदी के अंत में हारमोनियम को विशेष रूप से पारसी और मराठी मंच संगीत में जगह मिली। कारण यह कि इसे संभालना, सिखाना और बजाना काफी आसान था।

जब उठने लगी थीं विरोध की आवाज़ें

साल 1939 के आसपास हारमोनियम के खिलाफ आवाज़ उठनी शुरू हुई। रवींद्रनाथ टैगोर से लेकर पंडित नेहरू तक इसके विरोध में थे। हारमोनियम अपनी लोकप्रियता के चरम पर था, लेकिन शास्त्रीय संगीत से जुड़े घराने इसे स्वीकारने के लिए तैयार नहीं थे। लोग इसे भारतीय शास्त्रीय संगीत के लिए हानिकारक मानते थे। कुछ बरसों बाद महात्मा गांधी के स्वदेशी आंदोलन की वजह से हारमोनियम के खिलाफ माहौल बनने लगा क्योंकि इसे विदेशी वाद्ययंत्र माना जाता था। फिर 19 जनवरी 1940 को रवींद्रनाथ टैगोर ने ऑल इंडिया रेडियो के कोलकाता केंद्र के निदेशक को अपने पत्र में कहा, 'मैं हमेशा संगीत की संगत में हारमोनियम के उपयोग के खिलाफ रहा हूं। इसे हमारे आश्रम से पूरी तरह से हटा दिया गया है। अगर आप इसे ऑल इंडिया रेडियो के स्टूडियो से बैन करा सकें तो यह आपकी भारतीय संगीत के हित में बहुत बड़ी सेवा होगी।' कई साहित्यकारों ने भी हारमोनियम को बैन करने के लिए पत्र लिखा।

1940 में बैन हुआ था हारमोनियम

ऑल इंडिया रेडियो के दिल्ली केंद्र पर वेस्टर्न म्यूज़िक के निदेशक जॉन फॉल्ड्स और मुंबई केंद्र पर वॉल्टर कॉफमन ने भी हारमोनियम को भारतीय संगीत के लिए गैर-ज़रूरी माना। इसके बाद 1 मार्च 1940 को ऑल इंडिया रेडियो से एक सकुर्लर जारी कर आकाशवाणी के सभी केंद्रों पर हारमोनियम बैन कर दिया गया। संगीत के प्रसिद्ध कलाकारों में लखनऊ संगीत अकैडमी के अध्यक्ष एस. एन. रतनजंकर ने भी बैन का समर्थन किया। आदेश में साफ तौर पर लिखा था कि ऑल इंडिया रेडियो में रियाज़ के लिए कोई भी हारमोनियम नहीं ला सकता। जिन केंद्रों के पास यह वाद्ययंत्र मौजूद है, वे इसकी नीलामी कर दें। कुछ लोग इसके समर्थन में भी सामने आए। बड़ी संख्या में कलाकार और हारमोनियम बनाने वाली कंपनियां बैन का विरोध करने लगीं।

अप्रैल 1980 में ऐसे हटा प्रतिबंध

आज़ादी के बाद 1962-63 में बी. जी. रेड्डी सूचना प्रसारण मंत्री बने तो उनके सामने हारमोनियम से प्रतिबंध हटाने की मांग उठने लगी। रेड्डी का पुणे में कुछ लोगों ने घेराव भी किया, लेकिन उन्होंने बैन नहीं हटाया। बाद में साल 1970 में इस मुद्दे पर सेमिनार हुआ। इसमें बड़े-बड़े संगीतकार और एक्सपर्ट पहुंचे। हल यह निकला कि केवल प्रयोग के तौर पर हारमोनियम का उपयोग टॉप ग्रेड कलाकारों के साथ संगत यंत्र के रूप में किया जाए। वहीं, हारमोनियम का प्रसारण सिंगल यंत्र के रूप में केवल उच्च कोटि के हारमोनियम वादक द्वारा ही होना चाहिए। इसके बाद आंशिक तौर पर प्रतिबंध हटाया गया। लेकिन पूरी तरह से बैन हटाने की मांग जारी रही। आखिरकार 40 साल बाद यानी 18 अप्रैल 1980 के शाम के समाचार बुलेटिन में हारमोनियम पर लगे सभी प्रतिबंध समाप्त करने की घोषणा कर दी गई।

AI Image

इसकी सहजता ने बनाया उपयोगी

ऑल इंडिया रेडियो के टॉप ग्रेड के तबला वादक उस्ताद अख्तर हसन कहते हैं, 'हमने भी अपने बुजुर्गों से सुना है कि हारमोनियम पर लंबे समय तक प्रतिबंध रहा। यहां तक कि ऑल इंडिया रेडियो के दिल्ली केंद्र से इसकी अर्थी भी निकाली गई। यह तब की बात है जब AIR का ऑफिस अलीपुर रोड पर हुआ करता था। भारतीय संगीत के लिए सबसे उपयुक्त सारंगी है और यही पारंपरिक इंस्ट्रूमेंट भी है। हारमोनियम पर एक से दूसरे सुर पर शिफ्ट करना सहज नहीं होता। इसमें काफी जर्क आता है यानी दो स्वरों के काफी बीच में गैप बनता है। आज सारंगी बजाने वालों की संख्या भी कम होती जा रही है और लोग अपनी सहूलियत के लिए हारमोनियम का इस्तेमाल कर रहे हैं।'

खारिज होने पर भी बना रहा प्रासंगिक

शास्त्रीय संगीत की जानी-मानी मर्मज्ञ और गिरिजा देवी की शिष्या आस्था गोस्वामी बताती हैं कि हारमोनियम टेम्पर्ड स्केल है। इसे ट्यून नहीं करना पड़ता। वह कहती हैं, 'जब हम लोग ऑडिटोरियम में प्रस्तुति देते हैं तो AC चलता है। इसकी वजह से हमारे साज़ बेसुरे हो जाते हैं। लेकिन यह समस्या हारमोनियम के साथ नहीं होती। तबले से लेकर दूसरे भारतीय साज़ों को बार-बार बीच में ट्यून करना पड़ता है। वहीं सारंगी के लिए बेहतरीन कलाकार की संगत रखनी पड़ती है। दूसरी ओर हारमोनियम बजाने से लेकर संभालने तक में काफी आसान है। इसी वजह से बड़े-बड़े उस्ताद शास्त्रीय संगीत के व्याकरण से हारमोनियम को खारिज मानते हुए भी इसके उपयोग के लिए मजबूर हैं।'

आज भी थमा नहीं है विरोध

अब भी हारमोनियम को विरोध सहना पड़ता है। पिछले साल शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमिटी ने सर्कुलर जारी किया थी कि 3 साल के भीतर सभी गुरुद्वारों से हारमोनियम हटा लिया जाए। इसकी जगह भारतीय वाद्ययंत्र इस्तेमाल किए जाएं। जानकारों की मानें तो इसका असर दरबार साहिब में दिख रहा है। यहां कीर्तन में हारमोनियम के साथ-साथ पारंपरिक वाद्ययंत्र भी नज़र आने लगे हैं। अकाल तख्त का मानना है कि हारमोनियम सिख परंपराओं का हिस्सा नहीं है, इसलिए इसे हटाया जाना चाहिए। इसे देश के दूसरे गुरुद्वारों से भी धीरे-धीरे रिप्लेस करने की बात चल रही है।

पाबंदियों के बावजूद कभी कम नहीं हुआ क्रेज़

दिल्ली के सबसे व्यस्ततम इलाकों में एक है पुरानी दिल्ली का दरियागंज मार्केट। यहां गोलचा सिनेमा के पास और नेताजी सुभाष रोड पर जसपाल सिंह की लगभग 76 साल पुरानी 'लाहौर म्यूज़िक हाउस' के नाम से म्यूज़िकल इंस्ट्रूमेंट्स की दुकान है। इस दुकान पर मेहंदी हसन, बड़े गुलाम अली खां, बेगम अख्तर, सितार वादक पंडित रविशंकर और उस्ताद सरोद वादक अमज़द अली खान तक का आना-जाना रहा है। जसपाल सिंह बताते हैं कि इस काम में हमारी चौथी पीढ़ी आ चुकी है। हिंदुस्तान के बंटवारे से पहले उनकी दुकान लाहौर में थी। बंटवारे के बाद उनका परिवार दिल्ली आ गया। उनके पिता ने साल 1948 में यह दुकान खोली। उनके पिता बड़े गुलाम अली खां साहब के शार्गिद थे। वह बताते हैं कि म्यूज़िकल इंस्ट्रूमेंट्स से हमारे परिवार का लगभग 100 साल से भी ज्यादा पुराना रिश्ता है। वह हारमोनियम सहित कई म्यूज़िकल इंस्ट्रूमेंट्स बनाते हैं, रिपेयर करते हैं और खुद बजाते भी हैं। हारमोनियम को लेकर जसपाल कहते हैं कि यह सदाबहार आइटम है। हारमोनियम काफी लंबे समय तक ऑल इंडिया रेडियो में बैन रहा और शास्त्रीय संगीत से जुड़े कुछ घरानों ने इससे किनारा किया। लेकिन इसका असर इसकी बिक्री पर कभी नहीं पड़ा। हारमोनियम की बिक्री और रियाज़ के लिए प्रयोग पर कोई पाबंदी नहीं रही। इसके पीछे बड़ी वजह है कि इसे बजाना, सीखना और कहीं भी ले जाना काफी आसान है। हारमोनियम की सहजता ने उसे बुलंदियों पर पहुंचाया है। लगभग 50 बरसों से गुरुद्वारों में हारमोनियम को तानपुरे और सारंगी से रिप्लेस करने की बात उठती रही है। लेकिन यह संभव नहीं है क्योंकि तानपुरा या तंबूरा बजाने और सीखने में रुचि रखने वाले बहुत कम हैं। हारमोनियम सीखना आसान है। वह बताते हैं कि हारमोनियम की बिक्री आज़ादी के बाद बढ़ी। म्यूज़िकल इंस्ट्रूमेंट्स में सबसे ज्यादा बिक्री हारमोनियम की होती है। जब मुल्क आज़ाद हुआ था तो दिल्ली में म्यूज़िकल इंस्ट्रूमेंट्स की 4 दुकानें थीं लेकिन आज दिल्ली-NCR में करीब 450 दुकानें हैं। उनकी दुकान में 8000 से लेकर 80 हज़ार तक के हारमोनियम मौजूद हैं। फ़िजी, मॉरिशस, ऑस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड में इसकी काफी डिमांड है।

'हारमोनियम को तानपुरे और सारंगी से रिप्लेस करने की बात उठती रही है। लेकिन यह संभव नहीं है क्योंकि तानपुरा या तंबूरा सीखना कठिन है'

विचार विंडो

हिटलर पापाओं के ज़माने में एक अलग-सा पिता

■ अनामिका

मेरे लिए सबसे रहस्यमय दृश्यों में एक रहा है, नदी की लहरों पर दो दीयों का बाप-बेटी/मां-बेटी भाव से कुछ देर तो सटकर साथ-साथ बहना, फिर आगे-पीछे हो जाना और अंत में यूं बिछड़ जाना। बचपन में मैं यह दृश्य देखकर रोने लगती थी तो पिताजी गोद में उठाकर समझाते थे- 'अरे बाबू, मैं तुमसे कभी नहीं बिछड़ुंगा! दीयों की माटी दरक भी जाए तो उनकी लौवें (लौ) नहीं बिछड़तीं! बुझने के पहले एक बार ज़ोर से उछलती हैं और आकाश की गोद में बैठ जाती हैं। आकाश सब लौवों का मायका है, वहां निर्वात के बाद भी सब लौवें सिर जोड़कर गपशप करती हैं जैसे तुम्हारी ननिहाल में नाना, मामा, मां और तुम्हारी वह 5 मौसियां। देखो वे तारे, वे उन लौवों की मोढ़े हैं शायद!'

हंसी-खेल में कोई बात कलेजे में उतार देने की कला और ताकत थी मेरे कवि-पिता श्यामनंदन किशोर के पास। अपने गीतों में भी वह इतने ही सहज-सुंदर थे जितने जीवन में। कोई कितना भी थकाहारा हो उनके गीत सुनकर खिल उठता था। उनसे जुड़े रहे लोग कहीं टकरा जाते हैं तो यही कहते हैं कि उन्हें सुनकर, पढ़कर और देखकर जीवन की लौ अचानक ऊंची हो जाती थी।

फादर्स डे (16 जून, रविवार) पर स्पेशल

एक और उदाहरण याद आता है। रोज़ वह मुझे और भैया को ब्रह्ममुहूर्त में पैर दबाते-दबाते कोई श्लोक या गीत सुनाते हुए उठा देते थे। आदत ऐसी पड़ी कि आज भी 4 बजे नींद खुल ही जाती है। लगता है कि नहा-धोकर, धोती लपेटे हुए पापा सामने खड़े हैं। उस टैल्कम पाउडर की गंध भी आती है, कभी-कभी जो वह देह ठीक से पोंछे बिना ही लगा लेते थे तो मां कितना हंसती थीं। एक दिन तो मां ने उन्हें डांट भी पिलाई, जब हमें बिस्तर में देर तक गुड़ी-मुड़ी देखकर पापा सहसा बोले- 'कोई भी दिन जीवन का अंतिम दिन हो सकता है जैसे कोई मुलाकात अंतिम हो सकती है। इसलिए हर दिन को, हर मुलाकात को बेस्ट शॉट दे देना चाहिए!'

भैया के बहुत समझाने पर मुझे दिल्ली विश्वविद्यालय पढ़ने भेजा गया कि मुझे दुनिया की कुछ समझ तो होनी ही चाहिए। गर्ल्स हॉस्टल के गेट पर मुझे अकेला छोड़ना पापा के लिए विकट तो था ही, फिर भी मुझे हंसाने के लिए बोले- 'वह देखो, पाकड़ के पेड़ पर तोतों का पूरा परिवार ठाठ से बैठा है। घर की बहुत याद आए तो उधर देखना- जो सबसे कम खानेवाली सौम्य तोती होगी, वह होगी मां। जो सबसे ज्यादा टाएं-टाएं करने वाला तोता होगा, वह होगा तुम्हारा पापा यानी मैं। रोज़ सुबह फोन करूंगा। चिट्ठी लिखूंगा। घबराने की बात क्या है!'

यह कहकर वह जाने को पीछे मुड़े तो मुझे अचानक वही बात याद आई उन्होंने कुछ दिन पहले ही समझाई थी- 'कोई मुलाकात अंतिम हो सकती है..!' कलेजे में

पिता श्यामनंदन किशोर के साथ

ऐसी हूक उठी कि मैं पीछे दौड़ी, पर तब तक टैक्सी चल चुकी थी। नियति का कैसा इशारा! सचमुच वह हमारी अंतिम मुलाकात थी। 50 साल के हंसते-खेलते व्यक्ति के साथ अंतिम मुलाकात सहज सूझी कैसे, यह नहीं जानती पर सच तो यही है कि हाथों के तोते उड़ाती यह विलक्षण आत्मा अचानक ही देह की सरहद लांघ गई।

उनके गुरु, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने मेरा नाम प्रज्ञा पारमिता सुझाया था, लेकिन निराला के संग्रह की अनुगूंज उनके मन में ज्यादा करीब रही होगी तो अपनी बेटी के लिए सोचा होगा कि वह नाम-रूप के परे जाने वाली, किसी घेरे में न अंटने वाली अनामा शक्ति से जोड़कर देखी जाए।

पापा की अपनी पीढ़ी में पितृत्व के दो मॉडल उभरे थे- एक मॉडल था गांधी का और दूसरा हिटलर का। गांधी को लोग हृदय से बापू कहते थे। पर हिटलर के अनुयायी तो उसे 'डैडी' कहने को विवश थे। जैसे-जैसे जनतंत्र गहराया, एक कठिन सामंत और क्रूर डिक्टेटर वाला मॉडल अधिकांश पिताओं ने त्याग ही दिया और वह दोस्त-पिता बनने की ओर बढ़े। लेकिन मैं और भैया इस मायने में बहुत खुशकिस्मत थे कि कवि होने के कारण हमारे पिता स्वभाव से ही जनतांत्रिक थे। उन्होंने कोई फैसला हम पर थोपा नहीं, हमेशा हमसे खुला संवाद करके ही हमें आश्वस्त किया कि किसी दूसरे की आंख में गिरने से कहीं ज्यादा खतरनाक है अपनी आंख में गिर जाना क्योंकि सबसे ज्यादा तो हम अपने साथ ही रहते हैं, कोई और देखे, न देखे, खुद को हम लगातार देखते हैं। आत्म-छवि अच्छी बनी रहने से चित्त प्रसन्न रहता है, वरना अनाम भय घिर आता हैं मन में-

'जो अपने से आप डरेगा, उसका कौन सहारा होगा?
जो अपने को भूल गया हो, उसका क्या ध्रुव तारा होगा?'

हर जन्मदिन पर मां हमें ठीक से तैयार करके, अपने हाथों के सिले नए कपड़े पहना देती थीं और फिर वे लोग दो काम करते थे। पहला, घर के और पड़ोस के सब बड़े लोगों से आशीर्वाद दिलाते थे और दूसरा, बगल के बी. एन. स्टूडियो में हमारी फोटो खिंचवाते थे। एक बार स्टूडियो से निकलते हुए उन्होंने सहज भाव से एक ऐसी बात कही जो मेरे अंतर्मन में बैठ ही गई। उन्होंने कहा, 'सब फोटोग्राफर समझते हैं और यह ठीक भी है कि दुनिया का कोई चेहरा ऐसा नहीं जो किसी न किसी कोण से सुंदर न हो। यह बात आदमी के किरदार पर भी लागू होती है बिटिया। दुनिया का कोई व्यक्ति ऐसा नहीं जिसमें प्यार या सम्मान जगाने लायक कोई बात ही न हो, जो कुछ जिसमें प्यार या सम्मान जगाने लायक होता है, उसी पर ध्यान देकर उससे बातचीत शुरू करनी चाहिए।' रात को सोते समय हम एक ही पलंग पर आ जाते थे- बाईं तरफ भैया, फिर मां, फिर मैं, फिर पापा। इसी बड़े-से पलंग पर मेरा जन्म हुआ था। खिड़की से सटाकर वह पलंग (पलंग तो अब भी है) रखा रहता था। खिड़की के पास एक पेड़ था। उसके पीछे से चांद देखता रहता था कि कितने दत्तचित्त होकर पापा विश्व साहित्य से चुनिंदा कविताएं और कहानियां अपनी प्राणवान भाषा में हमें सुना रहे हैं।

एक अच्छी स्मृति है, मिलकर सिनेमा देखने जाने और लौटते समय चौराहे पर कुल्फी खाने की भी है। सिनेमा सिर्फ हम चारों नहीं जाते थे, अगल-बगल में रहने वाले कई आत्मीय परिवार अलग-अलग रिक्शों पर एक साथ सिनेमा जाते थे। एक साथ कई रिक्शों का काफिला जाता था- मौसा-मौसी, चाचा-चाची, मामा-मामी, सबके बच्चे। दशहरा समारोह में देशभर से शास्त्रीय गायक, वादक, नर्तक आते थे। उस समारोह का संचालन पापा ही करते। कभी-कभी कवि-सम्मेलनों में भी वह मुझे ले जाते और बहुत देर हो जाती तो दीवार की ओर पैर करके, दुशाला ओढ़ाकर वहीं मसनद पर मुझे सुला भी देते। मुझ बाल-कलाकार को दिनकर जी, जानकीवल्लभ शास्त्री जी और केदारनाथ सिंह जी का वात्सल्य पापा की वजह से मिला। उन दिनों मंच पर कई बार वे सब पापा के साथ होते थे। उनके कई गीतों के बोल कानों में अब तक गूंजते हैं। वह भी मेरे अंतरमन का हिस्सा हैं। बाद में मैंने अपने बच्चों पर भी यह प्रयोग किया। साहित्य और संगीत सोने के समय सुनाया तो बहुतेरी ध्वनियां अब तक उनके भीतर भी जीवित हैं।

जीवन में और जीवन के पार भी अनुगूंजों और परछाइयों के सिवा कुछ बचता नहीं। इन्हीं चुनिंदा परछाइयों और अनुगूंजों से एक प्रतिसंसार-सा हम शून्य में रचते चलते हैं-जो कुछ हमने सुना, सोचा, देखा या किया- उसकी परछाइयों/प्रतिध्वनियों का यह प्रतिसंसार ही शायद हमारा अपना बनाया हुआ स्वर्ग या नर्क होता है। देह छूटने पर हमारी अंतश्चेतना यहीं पर घर बनाकर रहती होगी। ऐसा मेरा अनुमान है। सच क्या है, पापा ही बताएंगे जब वह मुझे लेने आएंगे, जहां ज़िंदगी नामक हॉस्टल गेट पर वह मुझे छोड़ गए थे, 'कासाबिआनका' (आज्ञाकारी बालक की मशहूर कविता) के धीरज से वहीं तो खड़ी हूं मैं।

(लेखिका साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित सुप्रसिद्ध कवयित्री हैं।)

'उछलम-कूदम नहीं है योगासन'

हम जो योग करते हैं, क्या वह योग के सिद्धांतों के उलट है? क्या आजकल आसन-प्राणायाम का तरीका बदल गया है? हमें योग में ठहराव की ज़रूरत क्यों है, ऐसे ही सवालों की जवाब तलाशने के लिए वशिष्ठ योगाश्रम के संस्थापक योगगुरु धीरज से रजनी शर्मा ने की यह खास बातचीत:

Q आजकल सबको कम वक्त में ज्यादा फिट होना है। पर आप कहते हैं कि ज़िंदगी को ठहराव दें।

A इन दिनों हर गतिशील शख्स परेशान है। एक कथा है जिसमें डाकू अंगुलिमाल को 108 अंगुलियों की माला बनाने का टारगेट पूरा करना था तो वह जल्दबाज़ी में था। वह गौतम बुद्ध से कहता है, 'ठहर जाओ'। बुद्ध कहते हैं, 'मैं तो ठहरा हुआ हूं, तुम कब ठहरोगे?' इस बात को योग के संदर्भ में समझ सकते हैं कि चाहे आसन, प्राणायाम या ध्यान हो, ये सब हमारे अंदर ठहराव लाते हैं। योगासन वह है जिसमें थोड़ा-सा मूवमेंट होता है और फिर ठहराव। पतंजलि ऋषि ने इसके लिए ही कहा है 'स्थिरम् सुखम् आसनम्', इसमें ठहरना यानी स्थिर होना है और सुखम यानी वह ठहराव जो सुख दे। लेकिन आज हमें कहीं न कहीं पहुंचने की जल्दी रहती है। हम तो अपने मोबाइल फोन को भी स्थिर होकर नहीं देखते, एक से दूसरे ऐप में दौड़ाते रहते हैं। जब बैटरी खत्म होती है तो उसे रिचार्ज करते हैं लेकिन खुद को चार्ज करते हैं? क्या आपने कभी सोचा है कि सुबह अगर हम रनिंग करते हैं, जिम जाते हैं और हेवी एक्सरसाइज़ करके आते हैं तो ऐसे में हम खुद को रिचार्ज नहीं करते, अपनी बैटरी ही खर्च कर आते हैं। योग हमें रिचार्ज करता है और ऊर्जावान बनाता है। योग के सभी अंग चाहे आसन, प्राणायाम, ध्यान, यौगिक विश्राम हो- वे तन-मन के तनाव को कम कर, ऑक्सिजन की आपूर्ति बढ़ाकर हमें पहले से कही ज्यादा तरोताज़ा करते है, ऊर्जावान बनाते है। शवासन, योगनिद्रा ठहराव ही हैं। आप गौर करें कि जब हम सोकर उठते हैं तो तरोताज़ा होते हैं क्योंकि रातभर हम ठहरे हुए थे। ऋषियों ने सोचा कि जब हम सोकर नए हो जाते हैं तो तरोताज़ा रहने के लिए हर वक्त तो सो नहीं सकते। ऐसे में आसन, प्राणायाम की विधियां तैयार की गईं।

योगगुरु धीरज

योग दिवस (21 जून, शुक्रवार) पर विशेष

Q आप यह क्यों कहते हैं कि योगासन भी फास्ट फूड जैसा हो गया है?

A दुर्भाग्य से हमने फास्ट लाइफस्टाइल अपना लिया है। इसी वजह से योग के सिद्धांतों के उलट दूसरे देशों में की जानेवाली एक्सरसाइज़ को भी योगासन में शामिल करा दिया। आसन अब डायनेमिक मूवमेंट हो गया है, वहां ठहराव नहीं रहा। उसे 'पावर योगा' कहा जा रहा है। वह ऋषि पतंजलि के नियमों के उलट 'उछलम-कूदम' हो गया है। नुकसान यह हो रहा है कि ऐसा योग या एक्सरसाइज़ करने वाला शख्स खुद को हर वक्त थका हुआ महसूस करता है। लोग डिप्रेशन में जा रहे हैं क्योंकि हर वक्त उन्हें काम का बोझ सताता रहता है। असल में उन्होंने खुद को रिचार्ज तो किया ही नहीं, सिर्फ थका लिया है। सिर्फ आसन नहीं, प्राणायाम में भी फास्ट क्रियाएं जोड़ दी गईं जैसे भस्त्रिका और कपालभाति जिसमें सांसों की गति तेज होती है। असल में यह प्राणायाम नहीं है। यह योग के सिद्धांतों के अनुकूल नहीं है। अगर कोई रात को सोने की जगह हमें डायनेमिक स्लीप (सोते हुए खूब उछलना-कूदना) कराए तो क्या हम सो पाएंगे? अगर हम स्थिर नहीं होंगे और शरीर व मन को कंप्यूटर की तरह शटडाउन नहीं करेंगे तो नींद कैसे आएगी? कुछ लोग कहते हैं कि शरीर को सोने से पहले खूब थका लो तो अच्छी नींद आएगी। लोग रात को टेनिस खेलने लगते हैं कि शरीर थक जाएगा तो सोएगा लेकिन इसके उलट होता है। हमारा नर्वस सिस्टम ऐक्टिव हो जाता है। फिर नींद खराब हो जाती है। असल में जहां भी फास्ट शब्द जुड़ जाता है, वह हमें नुकसान करता है। फास्ट फूड यानी वह खाना जो जल्दी-जल्दी पकाया गया है। लोग सांसों को तेज़-तेज़ चलाने के लिए कहते हैं तो निश्चित रूप से यह हमारे लिए नुकसानदायक है। कई बार तो अस्थमा के मरीज़ को कपालभाति सिखा दिया जाता है। सोचकर देखें कि जो व्यक्ति सामान्य रूप से सांसें नहीं ले पा रहा, वह जल्दी-जल्दी सांस कैसे लेगा? जो सामान्य रूप से चल नहीं पाता, उसे हम दौड़ा देंगे तो बीमार हो जाएगा। दिल के मरीज़ को कपालभाति कराएंगे तो उसकी बीमारी बढ़ जाएगी। योग हमें दुरुस्त करता है पर उसमें मिलावट की वजह से नुकसान होता है। हमें दिन के बाद रात की ज़रूरत होती है, फिर से दिन की नहीं। हमें हर दिन स्लो होना होगा। यह स्लोडाउन प्रोसेस चलता रहना चाहिए। ठहराव की प्रैक्टिस होनी चाहिए।

AI Image

Q वज़न घटाने के लिए लोग फास्ट एक्सरसाइज़ करते हैं। उनके लिए क्या विकल्प है?

A अगर हमें सेहतमंद रहना है तो फास्ट चीज़ों से दूर रहना होगा। फास्ट चलना, फास्ट दौड़ना, फास्ट फूड खाना, फास्ट लाइफस्टाइल नहीं चलेगी। योग की रिलैक्सेशन तकनीक अपनानी होगी। रिलैक्स रहेंगे तो मेटाबॉलिज़म ठीक रहेगा। मेटाबॉलिज़म ठीक होने से वज़न धीरे-धीरे कम हो जाएगा। यह बहुत जल्दी नहीं होगा। महीने में 1 या 2 किलो तक वज़न घट जाए तो ठीक है। उससे ज्यादा वज़न अचानक घटना हमारे शरीर के अंगों के लिए ठीक नहीं है। योग करते हुए जल्दबाज़ी बिलकुल न करें। आजकल फास्ट फूड जैसा मेडिटेशन भी चलन में है। यह गलत है। हमें यह भी समझना होगा कि बीमार होने पर अस्पताल भी कहता है कि ठहर जाओ, बेड रेस्ट करो। आराम करोगे तो ठीक हो जाओगे। हर जीव यही करता है। लेकिन फिटनेस ट्रेनर हमारी गति बढ़ा रहे हैं। ज्यादा गति होने से शरीर में सूर्य नाड़ी (शरीर की ऊर्जा) बढ़ जाती है। सूर्य नाड़ी को मेडिकल साइंस सिंपैथेटिक नर्वस सिस्टम (Sympathetic Nervous System) कहता है। हम जितनी तेज़ी दिखाएंगे, उतना ही यह सिस्टम ऐक्टिव होगा। इससे तनाव बना रहता है। इसका असर हमारे शरीर के अंगों पर पड़ता है। हार्ट या किडनी खराब हो जाती है, अपच रहती है और डायबीटिज़ हो सकती है। इसलिए तथाकथित योग या एक्सरसाइज़ ट्रेनर्स की बातों में न आएं। कोई कहता है कि 108 सूर्य नमस्कार कर लो, जल्दी से पतले हो जाओगे तो यह बिलकुल गलत है। हम मोटे शख्स को दौड़ा देते हैं। यह भी पता होना चाहिए कि दौड़ने पर हमारे घुटनों पर करीब 4 गुना ज्यादा वज़न पड़ता है। अगर कोई 80 किलो का शख्स है तो उसके जोड़ों पर करीब 300 किलो वज़न आने लगेगा। ऐसे में उसके घुटने जल्दी खराब होंगे। वज़न घटे न घटे, बीमार ज़रूर पड़ सकते हैं। आखिर में सब कुछ छोड़कर वह घुटनों के इलाज में जुट जाता है। अब इसका मतलब यह नहीं है कि हमें सुस्त रहना है या लंबे समय तक कुर्सी पर बैठे रहना है। वैसे सब कुछ फास्ट करने की आदत का लोगों की सेक्शुअल लाइफ पर भी असर पड़ रहा है, वहां भी तो ठहराव चाहिए।

Q योगासन करते हुए कितना ठहरना चाहिए?

A जब भी कोई आसन करें तो सहजता से उसमें जितना ठहर सकें, उतना ही ठहरें। अभ्यास बढ़ेगा तो ज्यादा ठहरने लगेंगे। पहले दिन ही लंबा अभ्यास नहीं करना। योग करते हुए छोटे बच्चों के बारे में सोचें। चलना शुरू करने से पहले बच्चे खड़ा होना सीखते हैं। जब वे खड़े होते हैं तो शुरुआत में कुछ सेकंड में ही गिर जाते हैं। फिर धीरे-धीरे चलना सीख जाते हैं। आसन को जल्दबाजी में और गिनती के लिए न करें। वहीं, प्राणायाम करते हुए गहरी सांस लें, उसमें ठहराव लाएं। धीरे-धीरे 4 सेकंड और फिर 16-20 सेकंड तक उसमें ठहर सकते हैं। गहरी सांस के उदाहरण- उज्जायी, वशिष्ठ प्राणायाम हैं। इसके अलावा अनुलोम-विलोम करें। ओमकार स्वर के साथ करें या भ्रामरी भी कर सकते हैं। जहां तक मेडिटेशन की बात है तो वह घटित होता है। यह इसी तरह है कि जब हम आंखें बंद करके लेटते हैं तो नींद घटित हो जाती है। क्लासिकल संगीत की तरह क्लासिक योग का पालन करेंगे तो शांति मिलेगी। हिपहॉप यानी फास्ट योग करेंगे तो सिरदर्द मिलेगा। शुरुआत में मैंने बुद्ध की बात की थी। वह संदेश हमारे लिए भी है लेकिन हम नहीं सुन रहे।

आर.एन.आई. नं. DELHIN/2004/13707© सर्वाधिकार सुरक्षित। लिखित अनुमति के बिना संपूर्ण या आंशिक पुनर्प्रकाशन पूर्णतः प्रतिबंधित। स्वत्वाधिकारी बैनेट, कोलमैन एण्ड कम्पनी लिमिटेड के लिए राजीव यादव द्वारा टाइम्स ऑफ इंडिया प्रेस, 7 बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 से प्रकाशित तथा टाइम्स ऑफ इंडिया प्रेस, साइट IV, औद्योगिक क्षेत्र साहिबाबाद तथा प्लॉट नंबर 407। फोन : 43505400-04, फैक्सः 43505363, पंजीकृत कार्यालय : दादाभाई नौरोजी रोड, मुंबई-400001। विमान सेवा शुल्क : 1 रु.प्रति कापी। नेपाल में कुल मूल्य : सोमवार से शनिवार : नेपाली 5 रु. ; रविवार : नेपाली 6 रु.
स्थानीय सम्पादक* (दिल्ली) : राजेश मित्तल (*इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अन्तर्गत उत्तरदायी)